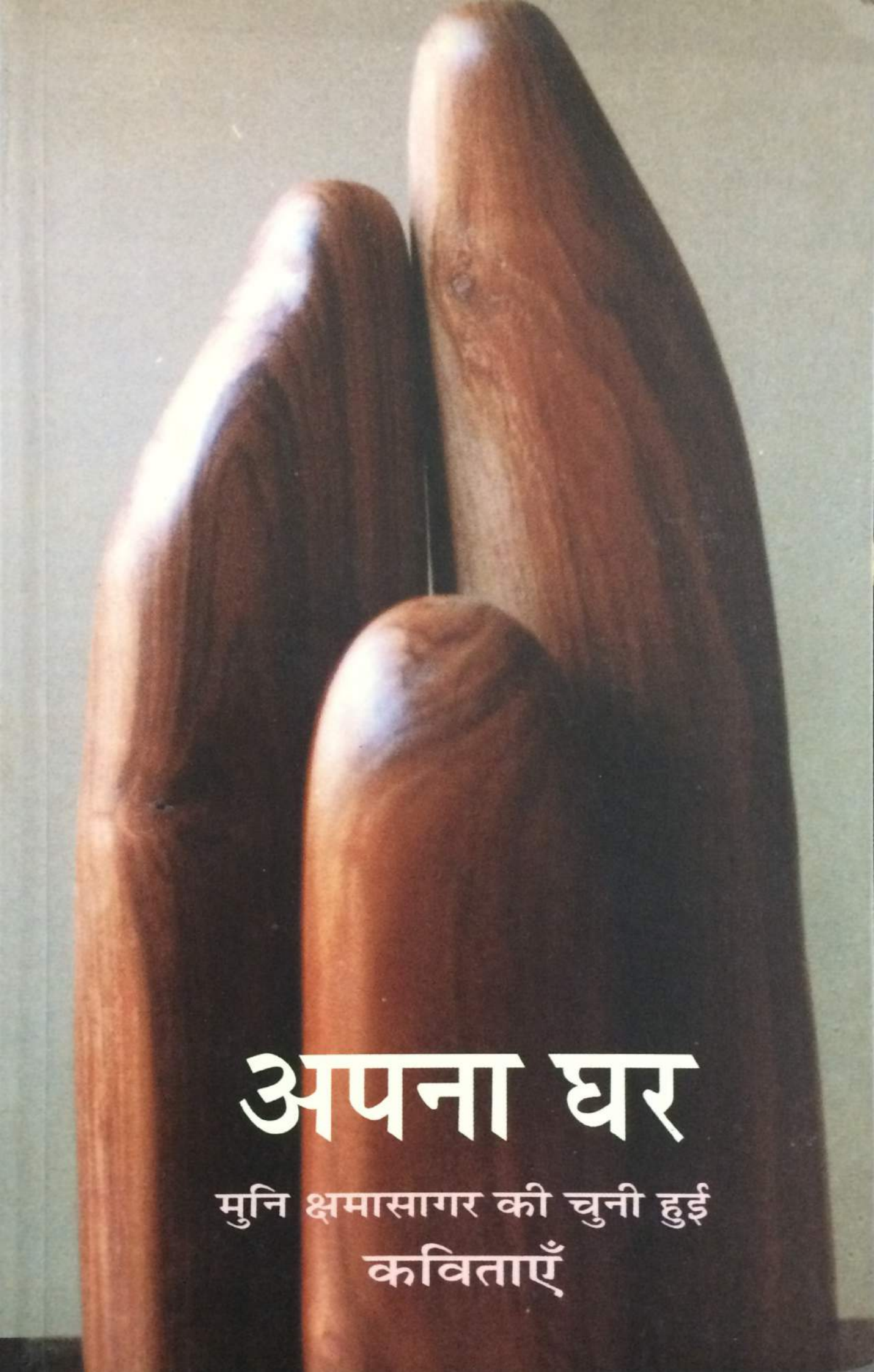

अपना घर

मुनि क्षमासागर की चुनी हुई कविताएँ

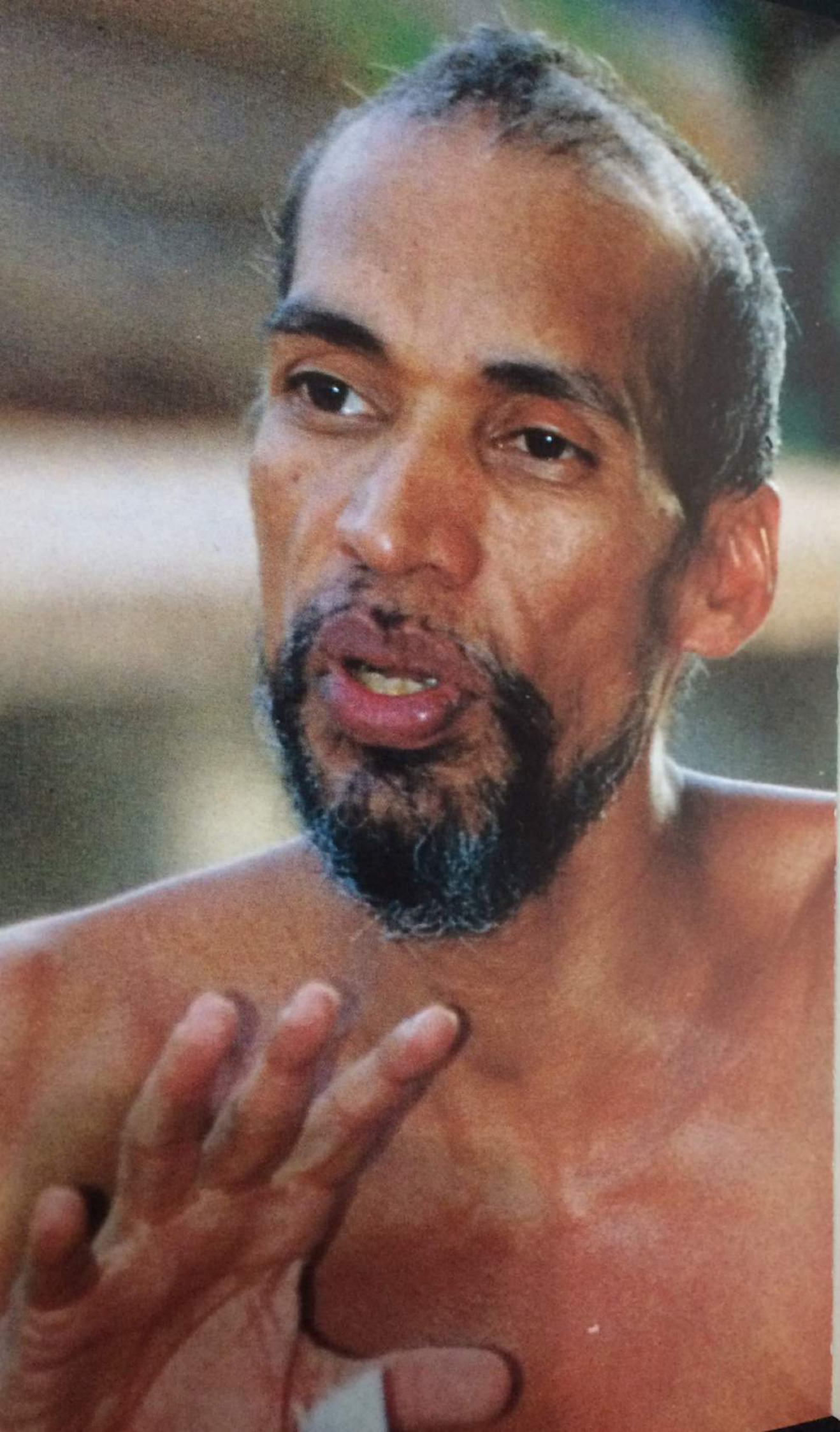

अपना घर

(मुनि क्षमासागर की चुनी हुई कविताएँ)

अपना घर

मुनि क्षमासागर

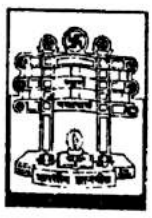

भारतीय ज्ञानपीठ

ISBN 81 - 263 - 0929 - 6

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला : हिन्दी ग्रन्थांक 38

अपना घर

(कविता-संग्रह)

मुनि क्षमासागर

प्रकाशक :

भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड

नयी दिल्ली-110 003

मुद्रक : बी.के. ऑफसेट, दिल्ली-110 032

आवरण : अशोक भौमिक

पहला संस्करण : 2003

मूल्य : 40 रु.

© भारतीय ज्ञानपीठ

APNA GHAR

(Hindi Poems)

by Muni Kshamasagar

Published by

Bharatiya Jnanpith

18, Institutional Area, Lodi Road

New Delhi-110 003

First Edition : 2003

Price : Rs. 40

अनुक्रम

अकिंचन	9
बारिश	10
विश्वास	11
घोंसला	12
भगवान	13
मुखौटे	14
उड़ान	15
निसर्ग	16
भाई तुम महान हो	17
बँटवारा	18
रास्ते	19
तुम्हारा होना	20
रीतापन	21
निर्लिप्त	22
आत्मीय स्पर्श	23
अपना घर	24
सुबह की तलाश	25
आदत	26
चित्रांकन	27
प्रतिदान	28
शीशा देने वाला	29
सम्बन्ध	30

चिड़िया
पीड़ा 31
सफेद पर सफेद 32
खेल 33
साधना 34
गन्तव्य 35
पहला कदम 36
दाता 37
एक अनुभूति 38
चुप रह जाता हूँ 39
फानूस पर चिड़िया 40
मैंने ऐसा क्यों सोचा 41
प्रतियोगिता 42
झूठा सच 43
आत्मदीक्षा 44
स्वीकारोक्ति 45
और और अपना 46
कभी ऐसा हो 47
सागर असीम होकर भी... 48
नाव 49
सीढ़ी हूँ 50
घर-1 51
आवाजें 52
कल ? 53
सावधान 54
सहयात्राएँ 55
नदी आयी है 56
मुक्ति 57
वही है 59
रोशनी के लिए 61
62

कुछ भी नहीं	63
ना सही	64
अगर	65
मैं चुप	66
घर	68
खिड़की	69
इस तरह	70
शिकायत	72
नि:शेष	73
एक ईंट	74
उसने कहा	75
सोच	76
जिन्दगी-भर	77
काँधे	78
साज	80
बसन्त	82
रेत पर पैरों की छाप	83
अनहोनी-1	84
अनहोनी-2	85
स्वयं अकेला	86
लोग हँसते हैं	87
कहानी-अनकहनी	88

अकिंचन

देने के लिए
मेरे पास
क्या हैं
सिवाय इस अहसास के
कि कोई
खाली हाथ
लौट न जाए।

बारिश

चिड़िया
भीग जाती है
जब बारिश आती है
नदी
भर जाती है
जब बारिश आती है
धरती
गीली हो जाती है
जब बारिश आती है
पर बहुत मुश्किल है
इस तरह
आदमी का
भीगना और
भर पाना
आदमी के पास
बचने के
उपाय हैं न!

विश्वास

मैंने पूछा
चिड़िया से
कि आकाश
असीम है
क्या तुम्हें अपने
खो जाने का
भय नहीं लगता?
चिड़िया कहती है
कि वह
अपने घर
लौटना जानती है।

घोंसला

मैंने चिड़िया को
घोंसला बनाते देखा है
मैंने उसे
दाना चुगते
और झट से
आकाश में
उड़ते देखा है
मैं चाहता हूँ
कि चिड़िया
मुझे भी
यह सब सिखाए
कि किस तरह
जमीन से
जुड़े रहकर
आकाश में
उड़ा जा सकता है,
कि किस तरह
असीम आकाश में
उड़ने का अहसास
एक घोंसले में
रहकर भी
जीवित रखा जा सकता है।

भगवान

भगवान
कितना बड़ा है
मैंने
एक बच्चे से पूछा
उसने मुस्कराकर
अपने दोनों हाथ फैलाये
और जैसे
मुझे समझाया
कि इतना बड़ा
तब सचमुच
मुझे भी लगा
कि जितना जिसके
जीवन में समा जाए
भगवान उतना ही बड़ा।

मुखौटे

अपने बच्चों को
डराने-धमकाने
हमने कुछ
डरावने चेहरे
अपने लिए
बनवाये थे
बच्चे कुछ दिन
डरते रहे
फिर असलियत जानकर
हँसते रहे
अब बच्चे
बड़े हो गये हैं
हमारे चेहरे लगाकर
हमें ही डरा रहे हैं।

उड़ान

नदी के ऊपर
उड़ती चिड़िया ने
आवाज दी
नदी ने मुस्कराकर कहा—
बोलो चिड़िया
चिड़िया ने
और ऊँची उड़ान ली
पहाड़ के ऊपर
उड़ती चिड़िया ने
आवाज दी
पहाड़ ने धीरे से कहा—
बोलो चिड़िया
चिड़िया ने
और ऊँचे उड़ते-उड़ते पुकारा
पर आवाज खो गयी
चिड़िया लौट आयी है
वह कहती है
कि अपनी आवाज
अपने तक आती रहे
इतना ही
ऊँचे उड़ना।

निसर्ग

सूरज ने कहा—
अपने द्वार खोलो
मेरी रोशनी
तुम्हारी होगी
वृक्षों ने कहा—
मेरे करीब बैठो
मेरी छाया
तुम्हारी होगी
नदियों ने कहा—
मेरे किनारे आकर
हाथ बढ़ाओ
मेरी बहती धारा
तुम्हारी होगी
मैंने ऐसा ही किया
अब रोशनी मेरी है
छाया भी मेरी है
मेरे जीवन की धारा
निर्बाध बहती है।

भाई तुम महान हो

मैंने आकाश से कहा—
तुम बहुत ऊँचे हो
आकाश ने
मुस्कराकर कहा—
तुम मुझसे भी
ज्यादा ऊँचे हो
मैंने सागर से कहा—
तुम खूब गहरे हो
सागर ने
लहराकर कहा—
तुम मुझसे भी
अधिक गहरे हो
मैंने सूरज से कहा—
सूरज दादा!
तुम बहुत तेजस्वी हो
सूरज ने हँसकर कहा—
तुम मुझसे भी
कई गुने तेजस्वी हो
मैंने आदमी से कहा—
भाई तुम महान हो
आदमी झट से बोला—
तुम ठीक कहते हो।

बँटवारा

आकाश सबका
दीवारें हमारी अपनी
नदी सबकी
गागर हमारी अपनी
धरती सबकी
आँगन हमारा अपना
विराट सबका
सीमाएँ हमारी अपनी।

रास्ते

चिड़िया!
पूरा आकाश
तुम्हारा है
हर बार
तुम अपने लिए
अपना रास्ता बनाती हो
सुदूर क्षितिज तक
आती - जाती
और चहचहाती हो
दुनिया ने
जितने रास्ते बनाये
उनमें लोग
कभी उजड़े
कभी भटके
कभी भरमाये
पर तुम्हारा
रास्ता साफ है
जिससे गुजरने पर
सारा आकाश
जैसा है
वैसा ही
रहता है।

तुम्हारा होना

चिड़िया!
तुम हो
कि तमाम विपदाओं
के बीच भी
नीड़ बनाने
और तिनके लाने का
साहस बना रहता है
तुम हो
कि आसपास
होने वाली
भयावह आवाजें
गीत गाने
और चहचहाने को
रोक नहीं पातीं
तुम हो
कि नीचे गिराने के
प्रयत्न में खड़े
लोगों के बीच
ऊँचे उड़ने की बात
मन को सहारा देती है।
मैं कृतज्ञ हूँ चिड़िया
कि तुम हो।

रीतापन

चिड़िया आयी
उसके करीब
एक चिड़िया
और आयी
चहचहायी
सारा आकाश
भर गया
चिड़िया की
चहचहाहट से
जीवन का रीतापन
भर नहीं पाया आदमी
परस्पर मधुर संवाद से।

निर्लिप्त

चिड़िया जानती है
तिनके जोड़ना
नीड़ बनाना
और बच्चों की
परवरिश करना
बड़े होकर
बच्चे बना लेते हैं
अपना अलग नीड़
वह सहज
स्वीकार लेती है
अकेले रहना
उसे नहीं होती
शिकायत
अपने-पराये किसी से भी
वह भूल जाती है
तमाम विपदाएँ
उसे याद रहता है सदा
गीत गाना / चहचहाना
असीम आकाश में उड़ना
और अपना चिड़िया होना।

आत्मीय स्पर्श

जीवन
आकाश सा हो
तो विस्तार
असीम है
जीवन
वृक्ष सा हो
तो छाया
सघन है
जीवन
सूरज सा हो
तो रोशनी
हरदम है
जीवन में
आत्मीय स्पर्श हो
तो हर क्षण
स्वर्णिम है।

अपना घर

चिड़िया तुम आती हो
मेरे घर
मुझे अपना घर
तब बहुत अच्छा
लगने लगता है।
तुम बना लेती हो
अपना घर
मेरे घर में
मुझे यह भी
अच्छा लगता है।
मैं जानता हूँ
तुम मेरे घर
नहीं आती
अपने घर आती हो
पर अपने घर
आने के लिए
तुम्हारा मेरे घर आना
मुझे अच्छा लगता है
सचमुच
तुम्हारे घर ने
मेरे घर को
अपना घर बना दिया।

सुबह की तलाश

कई बार सोचा
कि सुबह होते ही
पक्षियों का
मधुर गान सुनूँगा।
कि सुबह होते ही
उगते सूरज
खिलते फूल
और बहती नदी का
सौन्दर्य देखूँगा।
किसी वृक्ष के नीचे
शीतल शिला पर
अपने में मगन होकर बैठूँगा।
पर अपने ही
मन के मलिन अँधेरे में
अपने ही जीवन के
आर्त स्वरों में
और अपने ही
बनाये बन्धनों में
घिरा सिमटा मैं
सुबह की तलाश में हूँ।

आदत

चिड़ियों का
आकाश में
ऊँचे उड़ना
प्रकृति का
सहज-सरल
और उन्मुक्त होना,
अब हमें प्रेरणा नहीं देता।
वृक्षों का
हवाओं में लहलहाना
और फल-फूलों से भरकर
कृतज्ञता से झुक जाना
अब हमें आन्दोलित नहीं करता।
किसी का
सच्चा होना
भला और अच्छा होना
अब हमें चुनौती नहीं देता।
असल में
हमारी आदत नहीं रही
आदतें बदलने की।

चित्रांकन

उसने कहा—
जीवन में
एक चित्र ऐसा बनाना
कि जिसमें सब ओर
खुला आकाश हो
कि अपनी सीमाएँ
स्वयं निर्धारित करता
कोई महासागर हो,
कि अपने ही बनाये
किनारों के बीच
बहती नदी हो,
कि अपने ही हाथों
अपना सर्वस्व लुटाता
एक वृक्ष हो
और समूचे आकाश को
अपने गीतों से
भर देने वाली
कोई चिड़िया हो,
जरूर बनाना
जीवन का ऐसा चित्र,
जिसमें जीवन और जगत के बीच
सीधा सम्बन्ध हो।

प्रतिदान

चिड़िया ने
अपनी चोंच में
जितना समाया
उतना पिया
उतना ही लिया,
सागर में जल
खेतों में दाना
बहुत था।
चिड़िया ने
घोंसला बनाया इतना
जिसमें समा जाए
जीवन अपना
संसार बहुत बड़ा था।
चिड़िया ने रोज
एक गीत गाया
ऐसा जो
धरती और आकाश
सब में समाया
चिड़िया ने सदा सिखाया
एक लेना
देना सवाया।

शीशा देने वाला

जब भी मैं
रोया करता
माँ कहती—
यह लो शीशा,
देखो इसमें
कैसी तो लगती है
रोनी सूरत अपनी
अनदेखे ही शीशा
मैं सोच-सोचकर
अपनी रोनी सूरत
हँसने लगता।
एक बार रोई थी माँ भी
नानी के मरने पर
फिर मरते दम तक
माँ को मैंने खुलकर हँसते
कभी नहीं देखा।
माँ के जीवन में शायद
शीशा देने वाला
अब कोई नहीं था।
सबके जीवन में ऐसे ही
खो जाता होगा
कोई शीशा देने वाला।

सम्बन्ध

नदी बहती है सदा
किनारे बन जाते हैं।
नदी बदलती है रास्ता
किनारे मुड़ जाते हैं।
नदी उफनती है कभी
किनारे डूब जाते हैं।
नदी समा जाती है सागर में
किनारे छूट जाते हैं।
सम्बन्धों की सार्थकता
मानो जीवन के प्रवाह की
पूर्णता में है।

चिड़िया

मैं देखता हूँ
चिड़िया
रोज आती है।
और मैं जानता हूँ
वही चिड़िया
रोज नहीं आती।
पर यह दूसरी है
मैं ऐसा कैसे कहूँ!
अच्छा हुआ
मैंने कोई नाम नहीं दिया
उसे चिड़िया ही
रहने दिया।

पीड़ा

घर का
बँटवारा हो गया
जमीन - जायदाद
सब बँट गयी,
अमराई और कुँआ भी
आधे - आधे हो गये,
अब मेरे हिस्से में मेरा
और उसके हिस्से में
उसका आकाश है।
सवाल यह नहीं है
कि किसे कम मिला
और किसके हिस्से में
ज्यादा आया है,
मेरी पीड़ा
अपने ही
बँट जाने की है।

सफेद पर सफेद

मैंने कई बार
उससे कहा
कि सफेद पर सफेद से
मत लिखा करे,
इस तरह लिखना
कहाँ दिखता है ?
उसका कहना है कि
सवाल लिखने का है
दिखने का ख्याल
एकदम झूठा है,
और सफेद पर
काला लिखना
ठीक भी नहीं लगता,
सफेद पर तो
सफेद ही लिखा जाता है,
तब कितना भी लिखो—
कागज
सफेद रहा आता है।

खेल

देखा,
एक वृक्ष के नीचे
टूटे गिरे
छिन्न सूखे
पत्तों पर
उछल-कूद करती
चिड़ियों का
अपने ही पैरों की
ध्वनियाँ सुनना
और मुग्ध हो
कुछ कहकर
फिर चुप रहकर
विस्मय से
सब ओर देखना।
लगा, जगत का खेल
यही है इतना,
अपनी ही
प्रतिध्वनियों में
विस्मय विमुग्ध हो
खोए रहना।

साधना

अभी मुझे और धीमे
कदम रखना है,
अभी तो
चलने की
आवाज आती है।

गन्तव्य

यात्रा पर निकला हूँ,
लोग बार-बार
पूछते हैं, कितना चलोगे ?
कहाँ तक जाना है ?
मैं मुस्कराकर
आगे बढ़ जाता हूँ,
किससे कहूँ
कि कहीं तो नहीं जाना,
मुझे इस बार
अपने तक आना है।

पहला कदम

सारे द्वार
खोलकर
बाहर निकल
आया हूँ,
यह
मेरे भीतर
प्रवेश का
पहला कदम है।

दाता

उसने कुछ नहीं जोड़ा,
लोग बताते हैं
पहनने का एक जोड़ा भी
उसके पास
नहीं मिला,
जिन्दगी भर अपना सब
देता रहा,
दे-देकर
सबको जोड़ता रहा।

एक अनुभूति

जितनी दूर
देखता हूँ,
उतनी ही
रिक्तता पाता हूँ
जितना निकट
आता हूँ
उतना ही
भर जाता हूँ।

चुप रह जाता हूँ

जब कभी
लगता है
कि तुमसे पूछूँ—
बच्चों की तरह,
कि सूरज को
रोशनी कौन देता है,
कि आकाश में
इतना नीलापन
कहाँ से आता है,
कि सागर में
इतना पानी
कौन भर जाता है,
तब यह सोचकर
कि कहीं तुम हँसकर
टाल न दो
कि मैं बड़ा हो गया हूँ
मैं चुप रह जाता हूँ।

फानूस पर चिड़िया

काँच के
नाज़ुक फानूस पर
बैठी चिड़िया
बहुत भोली
और अच्छी लगती है,
पर मन डरता है
कि कहीं फानूस
टूटकर गिर न जाए
कि कहीं चिड़िया
उड़ न जाए।

मैंने ऐसा क्यों सोचा

आज
जब चिड़िया
देर तक
मुझे एकटक
देखती रही,
फिर सहमी
और सहसा उड गयी.
मैं दिन भर
उदास रहा,
कि मैंने
ऐसा क्यों सोचा
कि चिड़िया का
एक पिंजरा होता।

प्रतियोगिता

मैं उसी दिन
समझ गया था
जब मैंने
ईश्वर होना चाहा था,
कि अब
कोई जरूर
ईश्वर से
बड़ा होना चाहेगा।
और अब सब
ईश्वर से बड़े हो गये हैं,
कोई
ईश्वर नहीं है।

झूठा सच

बचपन के
जाने कितने सच
बड़े होने पर
झूठे मालूम पड़ते हैं,
क्या सचमुच
बड़े होते-होते हम
सच को
झूठ करते जाते हैं ?

आत्मदीक्षा

उड़ती चिड़ियों से मैंने पूछा—
तुमने नीलगगन में
उड़ना किससे सीखा?
जब बादल बरसे, मैंने पूछा—
तुमने धरती पर आना
किससे सीखा?
बहती नदियों से मैंने पूछा—
तुमने किससे
बहना सीखा?
सागर के तट पर आकर
मैंने सागर से पूछा—
तुमने गहरे में गहराना
और सतह पर लहराना
मुझे बताओ
किससे सीखा?
सब मुस्काये ऐसे
जैसे कहते हों
हमने सीखा—
अपने से
अपने से
अपने से।

स्वीकारोक्ति

हम
सबकी सब बातें
चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं।
लोग कहते हैं
कि सब स्वीकार करते जाना
कमजोरी है।
सो हम इस बात को भी
स्वीकार कर लेते हैं।
क्या करें
हम कमजोर हैं
हमसे व्यर्थ
लड़ा नहीं जाता।

और और अपना

जिसे पाकर लगे
कि अपने को पा लिया,
समझना वह अपना है।
और जिसे पाकर
लगे कि अपने को
खो दिया,
समझना वह और भी
अपना है।

कभी ऐसा हो

कभी ऐसा हो
कि देने का मन हो
और लेने वाला
कोई करीब न हो,
कभी हम
कुछ कहना चाहें
और सुनने वाला
कोई करीब न हो,
तब अहसास होता है
कि देने और
सुनाने वाले से
लेने और सुनने वाला
ज्यादा कीमती है।

सागर असीम होकर भी...

सागर के
शान्त जल में
जब भी कोई
अपना प्रतिबिम्ब देखने
झुकता है,
तब सागर भी
उन आँखों में
अपने को प्रतिबिम्बित होते
देख लेता है।
तब सागर असीम होकर भी
सीमाओं में
समा जाता है।

नाव

जो नाव मुझे
उस पार ले जाएगी,
एक दिन
उस पार पहुँचकर
उसे भी
छोड़ना होगा।
यह जानते हुए भी
मन, नाव से
कितना बँध जाता है।

सीढ़ी हूँ

मैं तो
लोगों के लिए
एक सीढ़ी हूँ,
जिस पर
पैर रखकर
उन्हें ऊपर पहुँचना है।
तब सीढ़ी का
क्या अधिकार
कि वह सोचे,
कि किसने
धीरे से पैर रखा
और कौन
उसे रौंदता चला गया।

घर–1

कल
चिड़ियों ने
घोंसले बनाये थे
आज भी बनाये हैं,
मैं सोचता हूँ
कि चिड़ियाँ
जब तक रहेंगी
घोंसले बनाती रहेंगी।
चिड़ियों के लिए
और शायद
हम सभी के लिए
अतीत
अनागत
और वर्तमान का
इतना ही अर्थ है,
कि हमें हर बार
रहने के लिए
एक घर बनाना है।

आवाजें

बनता
चुपचाप है,
टूटता
आवाज के साथ है।
जिन्दगी के
इस दौर में
अब आवाज ही
आवाज है।

कल ?

यहाँ के लोग
वक्त के
बड़े पाबन्द हैं,
कल का काम
आज नहीं करते।
और कल ?
कल तो कभी नहीं आता,
इसलिए
कभी नहीं करते।

सावधान

दर्पण
तोड़ने से पहले
इतना
जरूर देख लेना,
कहीं
दर्पण में बना
तुम्हारा प्रतिबिम्ब
टूट न जाए!

सहयात्राएँ

चलते-चलते
देखता हूँ,
अनायास ही
कोई न कोई
साथ हो जाता है।
कुछ दूर
वह साथ चलता है
फिर या तो
ठहर जाता है
या रास्ता ही बदल लेता है।
मैं यह सोचकर
आगे बढ़ जाता हूँ,
कि साथ चलने का सुख
इतना ही होता है।

नदी आयी है

एक नदी
मुझसे मिलने
सुना है, सारे रास्ते
दौड़ती हाँफती आयी है।
पर मेरे समीप आकर,
मुझमें समाने से पहले
देख रहा हूँ
वह, एकदम शान्त हो गयी है।
उसे देखकर
जरा भी तो नहीं लगता
कि थकी हारी
मुसीबतों को पार करती हुई
आयी होगी।
सोच रहा हूँ कि
क्या अपने में समाने
से पहले,
हम इतने ही शान्त
हो जाएँगे?

क्या अपने को पाने का
आनन्द इतना ही

असीम होगा, कि हम
सारी मुसीबतें भूल जाएँगे ?
नदी अपनी है
मैं अपना हूँ
पर नदी अपने को खोकर
मुझे पा लेती है।
वह स्वयं
सागर हो जाती है।
सचमुच, हम अपने को
खोकर, अपने को ही
पा लेते हैं।

मुक्ति

जो ज्योति-सा
मेरे हृदय में
रोशनी भरता रहा
वह देवता।
जो साँस बन
इस देह में
आता रहा
वह देवता।
जिसका मिलन
इस आत्मा में
विराग का
कोई अनोखा गीत
बनकर, गूँजता
प्रतिक्षण रहा
वह देवता।
मैं बँधा जिससे
मुझे जो मुक्ति का
सन्देश नव
देता रहा
वह देवता।

जो समय की
तूलिका से
मेरे समय पर
निज समय
लिखता रहा
वह देवता।
जो मूर्ति में
कोई रूप धरता
पर अरूपी ही रहा
वह देवता।
जो दूर रहकर भी
सदा से
साथ मेरे है
यही अहसास
देता रहा
वह देवता।
मैं जागता हूँ
या नहीं
यह देखने
द्वार पर मेरे
दस्तक सदा
देता रहा
वह देवता।
जो गति
मेरी नियति था
ठीक मुझ-सा ही
मुझे करता रहा,
वह देवता।

वही है

उसने
एक पेड़ लिखा
खिड़की से बाहर
झाँका, देखा
कोई और
उससे भी पहले
कई-कई पेड़ लिख गया।
उसने सोचा
वह अब पहाड़ लिखेगा
देखा सहसा
कोई और सामने
एक पहाड़ लिख गया।
उसने डरते-डरते, चुपके-से
एक नदी को लिखा
और देखा
एक नदी कोई और लिख गया।
अब वह नहीं लिखता
कहता है
कोई और है
और सिर्फ वही है
जो लिखता है।

रोशनी के लिए

साँझ के किनारे
खड़े होकर
मैंने पहाड़ से उतरती
रात को देखा
और सोच में
डूब गया
कि अँधेरा
कितने जल्दी
उतर आया
सुबह
रोशनी के लिए
सूरज को
पूरा पहाड़
चढ़ना होगा।

कुछ भी नहीं

प्यासा मृग
मरीचिका में उलझा
और तड़प उठा
हमने कहा—
बेचारा मृग!
ललचाती मीन
काँटे-में उलझी
और मर गयी
हमने कहा—
अभागी मीन!
एक पतिंगा
दीपक की जोत पर रीझा
और झुलस गया
हमने कहा—
पागल परवाना!
वाह रे हम,
अपनी प्यास
अपने लालच
और अपने दीवानेपन पर
हमें अपने से
कुछ भी नहीं कहना।

ना सही

माना कि हममें
भगवान बनने की
योग्यता है
पर इस बात पर
हम इतना
अकड़ते क्यों हैं ?
(वह तो किसी
चींटी में भी है)
सवाल सिर्फ
योग्यता का नहीं
हू-ब-हू होने का है
स्वयं को
भगवान मानने / मनवाने का नहीं
स्वयं भगवान
बन जाने का है
और फिर इस बार
ना सही भगवान
एक बेहतर
इन्सान तो बन जाएँ।

अगर

उसने सोचा
जब वह पहली बार
नीड़ से बाहर
पैर रखेगा
तब कोई आकर
उसे थाम लेगा
आँचल से लगाकर
दुलार लेगा
पंख सहलाकर
उसे उड़ने का साहस देगा
दो-चार कदम
उसके साथ चलेगा
पर हुआ यह
कि उसने
न पैर बाहर रखा
न पंख खोले
न उड़ा
सोचता ही रहा
अगर ऐसा न हुआ
तो क्या होगा?

मैं चुप

सबको छोड़कर
मैं अपने को
खोजने निकला
लोगों ने इसे
मेरी अकर्मण्यता
और पलायन कहा।
मेरा रास्ते पर
निश्छल
निरावरित चलना
लोगों को
पागलपन लगा।
मेरी सर्वमैत्री को
लोगों ने
अहंकार कहा।
मेरी सरलता को
लोगों ने
कायरता कहकर
खूब मज़ाक बनाया।
मैं चुप रहा
और चुपचाप
चलता रहा।

चलते-चलते
अपने में
खो गया / नहीं रहा
तब से
लोगों ने
मुझे देवता कहा।
अब मैं
उनका बनाया
पत्थर का
देवता हूँ।
अचरज की बात है
कि जीते-जी
मुझ आदमी में
जो देवत्व
किसी ने नहीं देखा
उसे आज
मेरी प्रतिमा में
कैसे देख लिया?

घर-2

यहाँ आदमी
पहले अपने मन का
एक घर बनाता है
जो बनते वक्त
बहुत बड़ा बनता है
पर रहते-रहते
बहुत छोटा
लगने लगता है
फिर मजबूरन
उसे
एक घर और
बनाना पड़ता है
आदमी
वही रहता है
घर
बदल जाता है।

खिड़की

सम्बन्धों के बीच
पहले
एक दीवार
हम खुद
खड़ी करते हैं
फिर उसमें
एक खिड़की
लगाते हैं
पर जिन्दगी-भर
करीब रहकर भी
हम खुलकर
कहाँ मिल पाते हैं ?

इस तरह

एक उड़ते
पखेरू ने
मुझसे निरन्तर
उड़ते रहने को कहा
एक पेड़ ने
तूफानों के बीच
अडिग
खड़े रहने को कहा
और एक नदी
मुझसे
निरन्तर
बहते रहने को कह गयी

सूरज ने
सुबह आकर
मुझसे
दिन-भर
रोशनी देते रहने को कहा
चाँद-सितारों ने
रात-भर
अँधेरों से

जूझने को कहा
और एक नीली झील
मुझे बाहर-भीतर
एक सार
निर्मल होने को कह गयी

सागर ने
धीरे से
लहरा कर कहा—
सीमाओं में रहो
आकाश ने अपने में
सबको समा कर कहा—
असीम होओ
और एक नन्हीं बदली
प्रेम से भरकर
मुझसे
निरन्तर
बरसने को कह गयी
मेरी जिन्दगी
इस तरह
सबकी हो गयी।

शिकायत

कागज की कश्ती
कुछ देर
लहरों में खेली
फिर डूब गयी
उसे शिकायत है कि
किनारों ने
उसे धोखा दिया

नि:शेष

मुझे
कहना है अभी
वह शब्द
जिसे कहकर
नि:शब्द को जाऊँ
मुझे
देना है अभी
वह सब
जिसे देकर
नि:शेष हो जाऊँ
मुझे
रहना है अभी
इस तरह
कि मैं रहूँ
लेकिन
'मैं' रह न जाऊँ।

एक ईंट

पुरानी
दीवार की
एक ईंट
और गिर गयी
लगता है जैसे
किसी ने पूछा हो
जिन्दगी
और कितनी रह गयी ?

उसने कहा

मौत ने आकर
उससे पूछा—
मेरे आने से पहले
वह
क्या करता रहा?
उसने कहा—
आपके स्वागत में
पूरे होश
और जोश में
जीता रहा
सुना है
मौत ने
उसे प्रणाम किया
और कहा—
अच्छा जियो
अलविदा...

सोच

एक वे हैं
जो ये सोचकर
जी रहे हैं
कि एक दिन
मरने का तय है
तो आज अभी
ठाठ से जियो
एक वे हैं
जो ये सोचकर
मर रहे हैं
कि आज अभी
यदि मौत आ जाए
तो शान से मरो
ये तो हम हैं
जो इस सोच में
न जी पा रहे हैं
न मर पा रहे हैं
कि वे क्यों
शान से मर रहे हैं
कि वे क्यों
ठाठ से जी रहे हैं ?

जिन्दगी-भर

हम जिन्दगी-भर
जीते हैं
कुछ इस तरह
कि जैसे
जीना नहीं चाहते
जीना पड़ रहा है
और मरते वक्त
मरते हैं
कुछ इस तरह
कि जैसे
मरना नहीं चाहते
पर मरना पड़ रहा है
शायद इसीलिए
बारम्बार हमें जीवन
दुहराना पड़ रहा है!

काँधे

मुझे मौत में
जीवन के—
फूल चुनना है
अभी मुरझाना
टूटकर गिरना
और अभी
खिल जाना है
कल यहाँ—
आया था
कौन, कितना रहा
इससे क्या?
मुझे आज अभी
लौट जाना है
मेरे जाने के बाद
लोग आएँ
अरथी सँभालें
काँधे बदलें
इससे पहले
मुझे खुद सँभलना है।
मौत आये
और जाने कब आये

अभी तो मुझे
सँभल-सँभलकर
रोज-रोज जीना
और रोज-रोज मरना है।

साज

मौत;
मैं सुन रहा हूँ
तुम्हारे
आने से पहले
तुम्हारे
आने की आवाज
कितना मधुर है
मेरे द्वार पर
आकर
तुम्हारा
मुझे पुकारने का अन्दाज
कि चलो!
ऐसा लगता है
मानो दूर कहीं
बज रहा हो
कोई सुरीला साज
कि चलो!!
और तुम्हारा
यह इस तरह
खुद चलकर
मेरे करीब आना

अपने हाथों
मेरे बन्द पिंजरे का
द्वार खोलना
मुझे मुक्त करना
कित्ता अच्छा
लग रहा है आज
अपने घर—
मानसरोवर
लौटता
मेरा मानस-हंस
तुम्हें प्रणाम करता है
अन्तिम बार आज।

बसन्त

मुझसे सुनकर
बात मरण की
मेरे भीतर—
तुम्हें निराशा
छाई लगती होगी
पर जीवन में
स्वीकार मरण का
हँसी-खुशी कर लेना
जीवन का
इनकार नहीं है
वह तो क्रम है
संसृति का
जैसे वृक्षों से
पतझर आने पर
सूखे पत्तों का गिरना
पतझर से
इनकार नहीं
स्वागत है
आते बसन्त का।

रेत पर पैरों की छाप

नदी के किनारे
रेत पर पड़ी
अपने पैरों की छाप,
सोचा
लौटकर उठा लाऊँ।
मुड़कर देखा, पाया
उठा ले गयीं हवाएँ
मेरी छाप अपने आप।
अब मन को
समझाता हूँ
कि हवाएँ सब
दुश्मनों की नहीं होतीं
जो मिटाने आती हों
हमारी छाप।
असल में,
अहं की रेत पर
बनी हमारी छाप
मिट जाती है
अपने-आप।

अनहोनी-1

तुमने सुना
कभी किसी वृक्ष ने
अपनी शाखाओं पर बने
पक्षी के घोंसले
अपने ही हाथों तोड़कर
नीचे फेंक दिये हों?
तुमने नहीं सुना,
मैंने भी नहीं सुना
ऐसा तो
किसी ने
कभी नहीं सुना।

अनहोनी-2

तुमने देखा
कभी आँधी-पानी तूफान में
वृक्ष से
पक्षी का घोंसला
टूटकर गिरते वक्त
वृक्ष का पत्ता-पत्ता
न काँपा हो?
कि आँसुओं की तरह
फूल और फल
न गिरे हों?
तुमने नहीं देखा
मैंने भी नहीं देखा,
ऐसा होते
किसी ने
कभी नहीं देखा।

स्वयं अकेला

उसने
चाहा कि
उसके सब ओर
सागर हो
और अब
जब उसके
सब ओर
सागर फैला है,
वह स्वयं
एक द्वीप की तरह
निर्जन
और अकेला है।

लोग हँसते हैं

मैंने
सूरज को बुलाया है
वृक्ष भी आएँगे
चिड़िया भी आएगी,
नदी और सागर
दोनों ने
आने को कहा है,
धरती और आकाश
दोनों के नाम
मैंने चिट्ठी लिख दी है,
कि हमारी
माटी की गुड़िया के
ब्याह में
सभी को आना है।
लोग हँसते हैं,
कहते हैं
यह मेरा बचपना है।
सचमुच, प्रकृतिस्थ होना
बचपन में
लौटना है।

कहनी-अनकहनी

कुछ कहने से पहले
हम कितना सोचते हैं
कि इस बार
सब कह देंगे।
पर कहने के बाद
मालूम पड़ता है
कि कहा कम
और अनकहा
ज्यादा रह गया है।
असल में, भावों के
प्रवाह में शब्दों का सेतु
या तो बन ही नहीं पाता
या टूट जाता है।

मुनिश्री क्षमासागर

जन्म : 20 सितम्बर, 1957,सागर (म.प्र.)
शिक्षा : एम.टेक., सागर विश्वविद्यालय
पूर्वनाम : सिंघई वीरेन्द्र कुमार
माता : श्रीमती आशादेवी
पिता : जीवन कुमार सिंघई
क्षुल्लक दीक्षा : नैनागिरि, 10 जनवरी 1980
ऐलक दीक्षा : मुक्तागिरि, 7 नवम्बर 1980
मुनि दीक्षा : नैनागिरि, 20 अगस्त 1982

प्रकाशित कृतियाँ :
'पगडंडी सूरज तक' और 'मुनि क्षमासागर की कविताएँ' (काव्य-संग्रह); 'एकीभाव स्तोत्र' (अनुवाद); 'अमूर्त शिल्पी' और 'आत्मान्वेषी' (संस्मरण); 'जैनदर्शन - पारिभाषिक कोश' (संकलन) तथा 'गुरुवाणी'(प्रवचन संग्रह) ।

अपना घर

मुनिश्री क्षमासागर की कविताओं को बिना पढ़े सोचा जा सकता है कि ये दिगम्बर, वीतराग मुनि की सन्देशबहुल नीति-कथाएँ होंगी, जिनमें सांसारिक जीवन की आसक्तियों / विकृतियों को रेखांकित किया गया होगा। पर ऐसा कतई नहीं है, इनमें वे अपनी आकांक्षाओं और सपनों से साक्षात्कार की मुद्रा में उपस्थित हैं। ये ऐसे संवेदनशील कवि की रचनाएँ हैं, जो अनुभव सम्पन्न और विचारप्रवण तो है ही, निर्लिप्त भाव के कारण उसकी अनुभूतियों में सारा संसार समाया है —कण-कण। इसलिए इन कविताओं में चिड़िया, नदी, समुद्र, सूरज, वृक्ष बार-बार आते हैं जिनसे बतियाते हुए कवि अपने मन को खोलता और उनके मुख से बोलता मिलता है। ये कविताएँ सरल हैं, पर इनमें अन्तर्जगत की गहरी संवेदनाएँ हैं। कवि सरोजकुमार के शब्दों में, 'इनमें कवि की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि समकालीन जीवन-स्थितियों से, निराक्रोश मुठभेड़ करती है।'

भारतीय ज्ञानपीठ मुनिश्री क्षमासागर की रचनाओं को प्रकाशित करते हुए प्रसन्नता का अनुभव करता है।

भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली - 110 003
संस्थापक : स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन, स्व. श्रीमती रमा जैन
ISBN 81-263-0929-6
मूल्य : 40 रुपये